[redacted]

संस्कृत में गद्य काव्य का उद्‌भव एवं विकास

कवियों की कसौटी गद्य काव्य (**गद्यं कवीनां निकर्ष वदन्ति**) उन वर्णनात्मक गद्य-साहित्यिक रचनाओं के लिए प्रयुक्त होता है जो काव्य-रचना के सम्पूर्ण लक्षणों से समन्वित, अतीव परिष्कृत एवं आलंकारिक शैली में लिखी हुई हैं। संस्कृत साहित्य शास्त्रकारों ने इन गद्य रचनाओं को कथा एवं आख्यायिका नामक दो भागों में विभाजित किया है और उनकी भिन्न-भिन्न विशेषताओं को गिनाया है। उदाहरणत: **भामह के अनुसार** आख्यायिका वह गद्य रचना है जिसमें विषय उदात्त हों और जो वक्त्र एवं अपरवक्त्र छन्दों में गुम्फित हो। यह अध्यायों में बंटा रहता है जो उच्छ्वास नाम से कहे जाते हैं। उसमें नायक अपने चरित्र (वृत्त) को स्वयं कहता है। कन्यापहरण, युद्ध, (प्रेमियों के) वियोग तथा अन्तिम संयोग इसमें मुख्य वर्णित घटनाएं होती हैं। दूसरी ओर कथा उच्छ्वासों में विभक्त नहीं होती और न ही इसमें वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्द होते हैं। यह संस्कृत अथवा अपभ्रंश की रचना हो सकती है। इसमें अपना वृत्त नायक स्वयं नहीं कहता बल्कि अन्य व्यक्ति के द्वारा वर्णित रहता है क्योंकि कोई कुलीन व्यक्ति अपना गुण आप ही कैसे कहेगा?

दण्डी ने इस वर्गीकरण का उपहास किया है। उनके अनुसार यह भेद निराधार है। दण्डी के अनुसार यदि नायक अपनी वास्तविक घटनाओं का वर्णन स्वयं करता है तो इसमें कोई भी (आत्मश्लाघादि) दोष नहीं है। पुनश्च, वर्णन का बन्धन इस भेद का मूल्य नहीं हो सकता क्योंकि आख्यायिका में भी वर्णन करने वाले अन्य व्यक्ति पाये जाते हैं। और यदि घटनाओं का वर्णन नायक स्वयं करता है अथवा कोई और व्यक्ति करता है, तो इसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। दण्डी के अनुसार यदि अध्यायों को उच्छ्वास अथवा लम्बकों में, छन्दों को वक्त्र अपरवक्त्र अथवा आर्या में भी लिखा जाए, इससे भी कोई अन्तर नहीं पड़ता। संक्षेप में, दण्डी के अनुसार कथा एवं आख्यायिका गद्य रचना के एक ही प्रकार के होने पर भी पृथक् नाम वाली है **''तत्कथा अख्यायिकेत्येका जातिः संज्ञाद्वयांकिता''**–काव्यादर्शः (1 : 28)

विश्वनाथ द्वारा साहित्यदर्पण (VI. 332 36) में इनकी विशेषताओं को देने का प्रयत्न अधिक सफल नहीं हुआ। विश्वनाथ के अनुसार प्रारम्भ में देवतास्तुति तथा दुर्जन के चरित्रों का वर्णन कथा का आवश्यक भाग है। रसान्वित विषय की अभिव्यक्ति पद्य में की जाती है और यह कहीं आर्या और कहीं वक्त्र अथवा अपरवक्त्र छन्दों से अंतर्गुम्फित होती है। आख्यायिका भी कथा के समान होती है। इसमें कवि के वंश का वर्णन होता है और कहीं कहीं प्राचीन कवियों का इतिवृत्त पद्य में होता है। कथा के विभाग आश्वास कहलाते हैं। आश्वास के प्रारम्भ में आने वाली घटनाओं को आर्या और वक्त्र छन्दों में प्राधान्य रूप से लक्षित किया जाता है।

कथा और आख्यायिका के **रुद्रट** द्वारा प्रतिपादित लक्षण कादम्बरी एवं हर्षचरित को आदर्श मानकर चलते हैं। रुद्रट के अनुसार देवता एवं गुरुओं को पद्यों द्वारा नमस्कार करके लेखक को अपने वंश एवं कर्त्तव्य को संक्षेप में लिखकर 'कथा' को आरम्भ करना चाहिए। तब अनुप्रासयुक्त गद्य का आश्रय लेकर नगरवर्णन से कथा का प्रारम्भ करना चाहिए। मुख्य कथानक में उपकथा का अन्तर्भाव करना चाहिए। इनके कथानक का उद्देश्य कन्या प्राप्ति होता है तथा इनमें श्रृंगार रस का प्रयोग करना चाहिए। ये सब विशेषताएं कादम्बरी में मिलती हैं।

आख्यायिका का लक्षण रुद्रट इस प्रकार देते हैं–अपने इष्टदेव एवं गुरुओं को नमस्कार करके प्राचीन कवियों की प्रशंसा करनी चाहिए। तदुपरान्त राजा के प्रति भक्ति अथवा दूसरों के गुणवर्णन में रुचि ही उसे अपना उद्देश्य बनाना चाहिए। कथा की भांति यह भी गद्य में रचित होना चाहिए। उसे अपने वंश का वर्णन करना चाहिए परन्तु पद्य में नहीं। इसका विभाजन आश्वासों में होना चाहिए और प्रत्येक आश्वास के प्रारम्भ में दो श्लेषमय आर्या छन्द की रचना करनी चाहिए। स्पष्टत: यह परिभाषा बाण रचित हर्ष चरित पर आधारित है।

भामह, रुद्रट एवं विश्वनाथ के द्वारा प्रतिपादित लक्षणों के विवेचन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि गद्य काव्य के वर्गीकरण का निषेध करते हुए दण्डी ठीक ही थे। यदि कोई भेद करना ही हो, तो अमरकोष में दी गई परिभाषा अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है। अमरसिंह के अनुसार आख्यायिका का प्रतिपाद्य विषय ज्ञात तथ्यों पर आधारित रहता है (आख्यायिकोपलब्धार्था) परन्तु कथा कवि की कल्पना पर आश्रित रहती है। ('प्रबन्ध कल्पना कथा') इनका इससे भी सुन्दर नाम 'गद्य काव्य' हो सकता है। इन रचनाओं में काव्य के सभी लक्षण उदाहरणत: अलंकारों का प्रयोग नगर, पर्वत, वन, नदियां, सरोवर, सूर्यास्त, सूर्योदय, ज्योत्स्नायुक्त रात्रि इत्यादि के विविध प्रकार के वर्णन मिलते हैं। इनका प्रतिपाद्य विषय ऐतिहासिक, जीवनी अथवा केवल कल्पित कहानी ही हो सकता है। दोनों प्रकार के गद्यों में ही कवि वर्ण्यविषय पर अधिक ध्यान नहीं देते। उनकी सम्पूर्ण शक्ति साहित्यिक प्रतिभा के प्रदर्शन में ही केन्द्रित होती है। यह प्रवृत्ति सब उपलब्ध काव्यों में अधिक

या कम मात्रा में पायी जाती है। कादम्बरी एवं वासवदत्ता में कथानक का महत्त्व कम है। यही बात हर्ष चरित्र में भी लागू होती है। दशकुमारचरित में नि:सन्देह कथानक अलंकारों के पूर्णत: अधीन नहीं है।

2. **गद्य रचना एवं गद्य काव्य में भेद**

संस्कृत-साहित्य में प्राचीनकाल से ही गद्य-रचनाएं उपलब्ध होती हैं। यजुर्वेद के गद्यसूक्तों एवं अथर्ववेद के कुछ गद्य भागों के अतिरिक्त ब्राह्मण एवं उपनिषद बहुत प्राचीन गद्य रचनाओं के उदाहरण हैं। इन ग्रन्थों में कहीं-कहीं आख्यान भी हैं उदाहरणत: ऐतरेय एवं शतपथ ब्राह्मण के आख्यान। उपनिषदों में भी सत्यकाम जाबाल इत्यादि की कथाएं मिलती हैं। कौटिल्य अर्थशास्त्र तथा पतञ्जलि का महाभाष्य भी गद्य में लिखे हुए है। परन्तु उनकी शैली का उद्देश्य है तथ्यों का उद्घाटन करना। गहन-विषयों का शास्त्रीय विश्लेषण एवं विवेचन ही उनका मुख्य उद्देश्य है। अभिव्यक्ति के परिष्कार, अलंकरण अथवा विस्तार का कोई प्रयत्न नहीं किया गया न ही मनोरंजन उनका उद्देश्य है। परन्तु गद्य काव्यों की बात बिल्कुल इनके विपरीत है। काव्यशास्त्रीय उपकरणों से अलंकृत अतिरम्य अभिव्यंजनाओं से विद्वज्जनों का मनोरंजन ही इनका मुख्य उद्देश्य है। लेखक के लिए भाषा एवं शैली प्रमुख हैं।

3. **गद्य का उद्भव तथा विकास**

संस्कृत साहित्य में गद्य काव्यों की प्राचीनता में कोई संदेह नहीं। पाणिनि की अष्टाध्यायी के प्रसिद्ध वार्तिककार कात्यायन ने आख्यायिका का साहित्यिक रचना के रूप में दो बार उल्लेख किया है। पाणिनि के सूत्र ''अधिकृत्य कृते ग्रन्थे'' (अष्टाध्यायी. V. 3-37) पर टिप्पणी करते हुए भी कात्यायन ने आख्यायिका का उल्लेख किया है (लुबाख्यायिकाभ्यो बहुलम्)। अष्टाध्यायी के IV, 2.60 सूत्र पर कात्यायन ने आख्यायिका का उल्लेख किया है (आख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यश्च)। इस विषय में ईसा से तीसरी शताब्दी के पूर्वार्ध में महाभाष्य के प्रणेता पतंजलि का भी साक्ष्य उपलब्ध होता है। कात्यायन के उपर्युक्त वातिक पर टिप्पणी करते हुए पतंजलि ने वासवदत्ता, सुमनोत्तरा और भैमरथी इन तीनों आख्यायिकाओं के नामों का उल्लेख किया है, ये तीनों ही आख्यायिकाएं आजकल उपलब्ध नहीं है। यहाँ उल्लिखित वासवदत्ता न तो सुबन्धु की 'वासवदत्ता' है और न ही बाण के द्वारा उल्लिखित 'वासवदत्ता'। पतंजलि के द्वारा इन ग्रन्थों का उल्लेख ईसा से पूर्व दूसरी शताब्दी में 'गद्य काव्यों' की सत्ता को सिद्ध करता है।

धनपाल ने तिलकमंजरी के भूमिकागत पद्यों में श्रीपालित की तरंगवती नाम की कथा का उल्लेख किया है (पुण्या पुनाति गंगेव गां तर◌ंवती कथा)। हाल (राजा) की सभा का सदस्य होने के कारण श्रीपालित का काल ईसा की दूसरी शताब्दी माना जा सकता है। इसी प्रकार रामिल एवं सोमिल के द्वारा रचित शूद्रक के चरित्र पर आधारित 'शूद्रक कथा' का तथा भ◌ारक हरिश्चन्द्र के द्वारा रचित कथाओं का उल्लेख उपलब्ध होता है। परन्तु ये सब रचनाएं उपलब्ध नहीं हैं। इनमें से सबसे प्राचीन दण्डी, सुबन्धु एवं बाण की कृतियां उपलब्ध हैं जो भारतीय गद्यकाव्य के पूर्ण विकास को प्रदर्शित करती हैं। प्राचीन ग्रंथों के अभाव में संस्कृत गद्य काव्य के विकास का वर्णन एक कठिन कार्य है : परन्तु 'संस्कृत गद्य काव्य ग्रीक गद्य काव्य से लिया गया'' इस मत का समर्थन करने वाले विद्वान् पीटरसन, रोहड़े, बेबर तथा राइख के मत को स्वीकार करना भी असम्भव है। भारतीय एवं ग्रीक गद्य काव्यों में प्रथम-दर्शन पर प्रेम का होना, प्रेमियों का एक-दूसरे को स्वप्न में देखना, नायक एवं नायिका का अद्भुत सौन्दर्य, प्रेम एवं प्रकृति का विस्तृत वर्णन इत्यादि की समानताएं ही इस मत का आधार हैं। परन्तु ये आधार प्रामाणिक सिद्ध नहीं होते। जैसा कि लुई ग्रे (वासवदत्ता की भूमिका) ने कहा है कि ''ये साम्य किसी बात को सिद्ध करते हुए प्रतीत नहीं होते। दोनों देशों के गद्य काव्य कथानक, योजना एवं भाव की दृष्टि से पूर्णत: भिन्न हैं। संस्कृत गद्य काव्य में कथासूत्र अथवा पात्रों के साहसपूर्ण कर्मो का भाग कम से कम मिलता है और काव्य शास्त्रीय अलंकरणों, प्रकृति के सूक्ष्म वर्णनों और शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक गुणों से युक्त विस्तृत चरित्र-चित्रण पर अधिक बल दिया गया है। परन्तु दूसरी ओर ग्रीक गद्य काव्य में कथानक पर सर्वोपरि बल दिया जाता है। पाठक का ध्यान एक साहसिक कार्य की ओर जाता है और असम्भावित घटनाओं की ओर आकृष्ट होता है। उसमें सुन्दर रचना की ओर अधिक ध्यान दिया गया है। प्रकृति का वर्णन एवं चारुत्व नाममात्र को ही किया गया है। संक्षेप में संस्कृत एवं ग्रीक पाठकों के समान उनके काव्यों में वर्णित भाव भी भिन्न-भिन्न पाये जाते हैं और इन दोनों में किसी प्रकार की निकटता को भी स्थापित नहीं किया जा सकता। घनिष्ठ सम्बन्ध का तो कहना ही क्या।''

इस प्रकार संस्कृत गद्य काव्य का सम्पूर्ण विकास स्वतंत्र रूप से भारतवर्ष में हुआ। आख्यायिका का विकास प्रशस्तियों में काव्य शैली का समन्वय करने से हुआ जैसा कि रुद्रदामा के गिरिनार शिखालेख तथा समुद्रगुप्त के इलाहाबाद स्तम्भलेख में देखा जा सकता है। इनमें अलंकृत वर्णनात्मक गद्य काव्य में संक्षिप्त ऐतिहासिक तथ्यों को प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार गाथाओं की सामग्री पर आश्रित 'कथा' को, लौकिक एवं अलौकिक घटनाओं एवं उद्देश्यों के साथ मुख्य कथानक में रखने

की चेष्टा की गई है। क्योंकि ये गद्य काव्य सुसंस्कृत पाठकों के लिए लिखे गए हैं अत: इनमें सब प्रकार के वर्णन अतीव अलंकृत भाषा में उपलब्ध होते हैं।

4. **प्रमुख गद्य काव्य**

दण्डी, सुबन्धु, बाण, ये तीन गद्यकाव्य-लेखक सर्वोत्कृष्ट हैं। यद्यपि दण्डी एवं सुबन्धु के काल को निर्धारित करने में कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलते तथापि विचार करने पर यह विदित होता है कि सुबन्धु बाण से पूर्ववर्ती हैं।

महाकवि सुबन्धु

सरस्वतीदत्तवरप्रसादश्चक्रे सुबन्धु सुजनैकबन्धुः।
प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्धविन्यासवैदग्ध्यनिधिर्निबन्धम्॥

(वासवदत्ता भूमिका श्लोक 13)

यद्यपि सुबन्धु का यश गद्यकवियों में सुस्थिर हो चुका था तथापि उनके जीवन का प्रामाणिक वृत्तान्त हमें बहुत कम ज्ञात है। विभिन्न प्रकार के संशय होने पर भी यह माना जा सकता है कि बाण ने निम्नलिखित पद्य में सुबन्धु के ग्रंथ का ही उल्लेख किया है।

कवीनाममगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया।
शक्त्येव पांडुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम्॥

(बाण : हर्षचरित श्लोक 11)

'निश्चय ही कवियों का अभिमान सुबन्धु की रचना 'वासवदत्ता' के कानों तक पहुँचते ही इस प्रकार चूर्ण हो गया जिस प्रकार इन्द्र द्वारा प्राप्त शक्ति (नामक अस्त्र विशेष) को कर्ण के पास देखते ही पांडुपुत्रों का गर्व जाता रहा।'

प्राकृतकाव्य 'गौडवहो' के लेखक वाक्पतिराज भी सुबन्धु को यशस्वी कवि भास, कालिदास तथा हरिश्चन्द्र की कोटि में रखते हैं।

'राघवपाण्डवीय' के कर्ता कविराज जिनका काल 1200 ईस्वी है, अपने आपको वक्रोक्ति मार्ग में निपुण बाण एवं सुबन्धु के समान समझते हैं।

सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः।
वक्रोक्तिमार्ग निपुणश्चतुर्थो विद्यते न वा॥

श्रीकण्ठचरित के कर्त्ता काश्मीरी कवि मंख जिनका काल ईसा की बारहवीं शताब्दी है, सुबन्धु के विषय में निम्नलिखित मर्मस्पर्शी उल्लेख करते हैं–''वासं याते सुबन्धौ विधः'' (जब सुबन्धु विधि के क्रूर हाथों में चले गये)। इससे स्पष्ट है कि संस्कृत लेखकों की गणना में सुबन्धु ने एक निश्चित स्थान प्राप्त कर रखा था। परन्तु उनके जीवनवृत्तान्त के विषय में हमें उन्हीं के ही ग्रंथ पर आश्रित होना पड़ता है। सुबन्धु ने निम्नलिखित पद्य में विक्रम के राज्य का सोत्कण्ठ उल्लेख किया है :–

सा रसवत्ता विहता नवका विलसन्ति चरति नो कङ्कः।
सरसीव कीर्तिशेषं गतवति भुवि विक्रमादित्ये॥

अर्थात् जिस प्रकार तालाब के पंक मात्र (अथवा स्थमात्र) शेष रह जाने पर सारस पक्षी अन्तर्हित हो जाते है (सारसवत्ता सरसी से युक्त होना), बगुले भी दिखाई नहीं पड़ते और न कंक पक्षी ही विचरता है, इसी प्रकार पृथ्वी पर विक्रमादित्य के कीर्तिमान शेष रहने पर वह रसिकता नष्ट हो गई, नए-नए कवि चमकने लगे और कौन किस पर प्रहार नहीं करता।'

यहाँ निश्चित ही सुबन्धु ने अपने विद्वान् संरक्षक का उल्लेख किया है जिसकी मृत्यु के पश्चात् राज्य अस्त-व्यस्त हो गया–यह विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त द्वितीय नहीं हो सकता। बहुत अधिक सम्भावना है कि यह विक्रमादित्य वह चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य था जिसने ईसा की 476-495 तक राज्य किया और हूणों के आक्रमण के कारण जिसके पश्चात् राज्य में अशान्ति हो गई। ऐसा प्रतीत होता है कि सुबन्धु अपने भूतपूर्व स्वामी में बहुत अनुरक्त था और इन घटनाओं पर मानसिक रूप से अशान्त था। राजाश्रय के नष्ट होने पर, कवि के लिए केवल सत्संगति ही आश्रय थी। इसीलिए वह अपने आपको सुजनैकबन्धु (सज्जनों का ही बन्धु) कहता है। अत: यह प्रतीत होता है कि सुबन्धु कुछ समय के लिए गुप्त साम्राज्य का सभासद् था परन्तु राज्य के पतन के पश्चात् संरक्षणहीन हो गया।

हाल में ही प्रकाशित गद्य-काव्य अवन्तिसुन्दरी के भूमिकागत पद्यों में बिन्दुसार के बन्धन से प्रपलायित सुबन्धु का उल्लेख एक असम्पूर्ण श्लोक में किया गया है। चन्द्रगुप्त मौर्य के पुत्र एवं उत्तराधिकारी बिन्दुसार के साथ इसका सम्बन्ध जोड़ना निष्फल है। अवन्तिसुन्दरी में उल्लिखित बिन्दुसार बुद्धगुप्त के राज्य की उत्तराधिकारी किसी शक्ति का कोई अधिकारी ही होगा।

सुबन्धु के काल के विषय में उसके नाम का प्राचीनतम उल्लेख वाक्पतिराज का है जिसका काल 734 ई. है। उसके ग्रंथ का प्राचीनतम उल्लेख कन्नौज के राजा हर्षवर्धन (606-647 ई.) के समकालीन कवि बाण का है। इस प्रकार अवश्य ही सुबन्धु बाण का पूर्ववर्ती है।

वासवदत्ता में उल्लिखित 'बौद्धसंगीतिमिवालंकारभूषितम्' (अर्थात् बौद्धों की संगीति के समान अलंकार से अलंकृत) को सुबन्धु के काल का अनुमान लगाने में आधार बनाया गया है। ऐसा कहा जाता है कि यहाँ धर्मकीर्ति द्वारा लिखित 'बौद्धसंगत्यलंकार' का उल्लेख है जो चीनी यात्री ईतिसंग (671-695 ई.) का पूर्ववर्ती है। परन्तु प्रोफेसर सिल्वन लेवी ने सिद्ध किया है कि उपर्युक्त उल्लेख से धर्मकीर्ति का कोई सम्बन्ध नहीं है और इस आधार पर सुबन्धु को ईसा की सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में नहीं रख सकते।

सुबन्धु के काल पर एक और साहित्यिक साक्ष्य इस प्रकार है-

''न्यायस्थितिमिवोद्योतकरस्वरूपाम्'' (अर्थात् उद्योतकर के द्वारा प्रतिपादित न्यायस्थिति के समान)।

यहाँ सम्बन्ध के द्वारा उल्लिखित उद्योतकर न्यायवार्तिक के रचियता माने जाते हैं, उन्होंने बौद्ध तांत्रिक दिङ्नाग (525-600) का खण्डन किया है। यदि दिङ्नाग और उद्योतकर को समकालीन भी मान लिया जाय तो भी वासवदत्ता की रचना 520 ई. से पूर्व सिद्ध नहीं हो सकती अत: सुबन्धु को छठी शताब्दी के उत्तरार्ध में ही रखना होगा। ऐसा भी माना जाता है कि सुबन्धु बाण का समकालीन था। परन्तु यह मत तर्कसंगत नहीं है क्योंकि बाण ने वासवदत्ता को उत्कृष्ट साहित्यिक रचना माना है जिससे कवियों का दर्प टूट गया था। पुनश्च, दिङ्नाग तथा उद्योतकर का काल भी पूर्णत: निश्चित नहीं है इसलिए सम्भवत: सुबन्धु बुद्धगुप्त विक्रमादित्य (छठी शताब्दी का पूर्वार्द्ध) के काल के कुछ समय ही बाद रहे होंगे।

वासवदत्ता

इस काव्य का कथानक बहुत ही साधारण है। राजा चिन्तामणि के पुत्र युवराज कन्दर्पकेतु ने स्वप्न में एक अति सुन्दर युवती को देखा और उसके सौन्दर्य से इतना आकृष्ट हुआ कि राजकुमारी (वासवदत्ता) को ढूँढ़ने के लिए अपनी राजधानी से चल पड़ा। अपने मित्र मकरन्द के साथ वह विन्ध्य प्रदेश में पहुंचा। रात्रि में उसने एक शुक सम्पत्ति के वार्तालाप को सुना और उसे ज्ञात हुआ कि उसके स्वप्न की राजकुमारी पाटलिपुत्र के राजा श्रृंगार-शेखर की पुत्री वासवदत्ता है और वह भी उससे (कन्दर्पकेतु से) प्रेम करती है और उसी को ढूढ़ने के लिए उसने तमालिका नाम की मैना को भेजा है। पक्षी से निर्दिष्ट दोनों प्रेमी-प्रेमिका पाटलिपुत्र में मिले। क्योंकि वासवदत्ता के पिता ने उसका विवाह किसी विद्याधर से निश्चित कर रखा था, इसलिए दोनों ने अज्ञात पलायन का निश्चय किया। एक मायावी घोड़े से विन्ध्यपर्वत में पहुँचे। कंदर्पकेतु अभी सो ही रहा था कि वासवदत्ता भ्रमण के लिए बन में गई जहाँ किरातों के दो गणों ने उसका पीछा किया। किरातों के दोनों गण वासवदत्ता को प्राप्त करने के लिए आपस में झगड़ पड़े। वासवदत्ता भाग निकली और उसे एक आश्रम के बीच से निकलना पड़ा जहाँ संन्यासी ने उसे शाप दिया और वह पत्थर में परिवर्तित हो गई। निराश हुए कंदर्पकेतु ने आत्महत्या करनी चाही परन्तु एक आकाश-ध्वनि ने इसका निवर्तन किया। अन्त में वह आश्रम में पहुँचा और उसके स्पर्श से राजकुमारी पुन: जीवित हो उठे।

यद्यपि कथानक बहुत ही छोटा है तथापि लेखक की यह स्वकल्पित कृति है। इसका साम्य नहीं है। वार्तालाप करते हुए पक्षी, जादू के घोड़े, संन्यासियों का शाप एवं आकाशध्वनियां इत्यादि कई विषयों को लेखक ने प्रस्तावित किया है जो कि साधारणत: भारतीय लोक साहित्य में पाया जाता है। लेखक का उद्देश्य अपनी अलंकार प्रतिभा का प्रदर्शन करना था न कि उपन्यास लिखने की शक्ति का। जैसा कि डा. सुशील कुमार डे का कहना है-''कथा की रोचकता घटनाओं में न होकर प्रेमियों के वैयक्तिक सौन्दर्य के चित्रण, उसकी उदारहृदयता पारस्परिक निरतिशय अनुराग, इच्छापूर्ति का बाधक दुर्भाग्य, खण्डित-प्रेम की वेदना एवं सब परीक्षाओं और कठिनाइयों में भी मिलन तक प्रेम की सुरक्षा में ही होती है।''

वासवदत्ता संस्कृत काव्यशास्त्रियों से अभिहित गौड़ी शैली में लिखी गई है। गौड़ी का लक्षण विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में ''श्लिष्ट शब्दयोजना, कठोरध्वनि वाले शब्दों का प्रयोग एवं समास बहुलता'' दिया है। सुबन्धु ने अपनी रचना को कई साहित्यक अलंकारा से विभूषित किया है जिनमें से श्लेष प्रधान हैं। सुबन्धु का स्वयं कहना है कि उसका काव्य-

''प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्धविन्यासवैदग्ध्यनिधि:।''

''प्रत्येक अक्षर में श्लेष होने के कारण वैदग्ध्य प्रतिभा की निधि है।''

वस्तुतः श्लेष को प्रस्तुत करने का उद्देश्य वक्रोक्ति की शोभा बढ़ाना है। उदाहरणतः एक युवती के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए सुबन्धु कहते हैं–

वानरसेनामिव सुग्रीवांगदोपशोभिताम्।

अर्थात् वानरों की सेना के समान सुग्रीव (युवतीपक्ष में सुन्दरग्रीव) और अंगद (युवतीपक्ष में अंगद नामक आभूषण विशेष) से सुशोभित थी।

श्लेष के पश्चात् विरोधाभाष (विरोध के समान प्रतीति) अलंकार का प्रयोग आधिक्य से पाया जाता है। विरोधाभास में श्लेष की सहायता से वास्तविक अर्थ की प्रतीति होती है।

उदाहरतः–'अग्रहेणापि काव्यजीवज्ञेन'।

अर्थात् यद्यपि वह 'ग्रह' नहीं था तो भी काव्य शुक्र (जीव) बुध का ज्ञाता था। इस विरोधाभास का परिहार इस अर्थ से होता है : यद्यपि वह चोरी इत्यादि से मुक्त था तो भी काव्य के सार को जानने में निष्णात था। परिसंख्या, मालादीपक, उत्प्रेक्षा, प्रौढ़ोक्ति, अतिशयोक्ति तथा काव्य–लिंग आदि दूसरे अलंकारों का भी सुबन्धु ने प्रयोग किया है। शब्दालंकारों में से अनुप्रास एवं यमक का प्रयोग किया गया है। अनुप्रास का उदाहरण दृष्टव्य है–

'मदकलकलहंससरसरसितोदभ्रान्तम्'' अथवा

''उपकूलसञ्जातनलिनिकुञ्जपुंजितकुलायकुक्कुट घटद्यूत्कारभैरवातिशयम्''

लगभग समान रूप से ही प्रयुक्त यमक का उदाहरण इस प्रकार है–

आनन्दोलितकुसुमकेसरे केसररेणुमुषि रणितमधुरमणीनां रमणीनां सिकचकुमुदाकारे मुदाकारे।

पाश्चात्य आलोचक डाक्टर ग्रे ने वासवदत्ता के बारे में कहा है–

''विलोल–दीर्घ समासों में वस्तुतः रमणीयता है एवं अनुप्रासों में अपना स्वतः का ललित संगीत। श्लेषों में सुश्लिष्ट संक्षिप्तता है। यद्यपि श्लेषों के द्वारा दो या दो से अधिक दुरूह अर्थों को प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया गया है तथापि वे दोनों पक्षों में घटने वाले वास्तविक रत्न हैं। सुबन्धु द्वारा किये गये वर्णन अधिक प्रशंसनीय है परन्तु उनके आधिक्य से प्रयुक्त होने के कारण कभी–कभी उद्वेजक से प्रतीत होते हैं। सम्पूर्ण आख्यान का अधिकतम भाग ये वर्णन ही हैं और कथानक इनके नीचे लुप्त प्रायः हो जाते हैं। पर्वत, वन, नदियों अथवा नायिका आदि का भी वर्णन क्यों न हो उनके सर्वतोमुखी बाहुल्य के होने पर भी, सौन्दर्य एवं संगति का नितान्त अभाव है।''

महाकवि बाणभट्ट

''बाण कवीनामिव चक्रवर्ती चक्रास्ति यस्योज्ज्सलवणशोभाम्।
एकातपत्रं भुवि पुष्पभूतिवंशाश्रयं हर्षचरितमेव।''

बाण ने गद्य के इतिहास में वही स्थान प्राप्त किया है जो कि कालिदास ने संस्कृत काव्य क्षेत्र में। पाश्चाद्वर्ती लेखकों ने एक स्वर में बाण पर प्रशस्तियों की अभिवृष्टि की है।

''जाता शिखंडिनी प्राग्यथा शिखंडी तथावगच्छामि।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणी बभूवेति।''

ऐसा आर्या सप्ताती के लेखक गोवर्धनाचार्य का कथन है। तिलकमंजरी के लेखक धनपाल की प्रशस्ति इस प्रकार है–

केवलोऽपि स्फुरन् बाणः करोति विमदान् कवीन्।
किं पुनः क्लृप्तसन्धानपुलिन्दकृतसन्निधिः॥

त्रिलोचन ने निम्नलिखित पद्य में बाण की प्रशंसा की है–

हृदि लग्नेन बाणेन यन्मन्दोऽपि पदक्रमः।
भवेत् कविवरंगाणां चापलं तत्रकारणम्॥

राघवपांडवीय के लेखक कविराज के अनुसार–

सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रय:।
वक्रोक्तिमार्ग निपुणश्चतुर्थो विद्यते न वा॥

पश्चाद्वर्ती लेखकों की अनन्त प्रशस्तियों में ये कुछ ही हैं।

बाण संस्कृत के कुछ गिने-चुने लेखकों में से एक हैं जिनके जीवन एवं काल के विषय में निश्चित रूप से ज्ञात है। कादम्बरी की भूमिका में तथा हर्षचरित के प्रथम दो उच्छ्वासों में बाण ने अपने वंश के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक सूचना दी है।

सोन नदी (प्राचीन हिरण्यबाहु) के तट पर स्थित प्रीतिकूट नाम के ग्राम में वात्स्यायनगोत्रीय विद्वद्ब्राह्मण कुल में बाण ने जन्म लिया। बाण अपने वंश का उद्भव सरस्वती तथा दधीचि के पुत्र सारस्वत के भाई वत्स से बतलाते हैं। वत्स का वंशज कुबेर था जिसका चतुर्थ पुत्र पाशुपत बाण का प्रपितामह था। बाण के पितामह का नाम अर्थपति था जिनको ग्यारह पुत्र हुए। बाण के पिता का नाम चित्रभानु था। बाण के शैशवकाल में ही उनकी माता राज्यदेवी की मृत्यु हो गई उनका पालन-पोषण उनके पिता के द्वारा ही हुआ। बाण अभी चौदह वर्ष के ही थे कि उनके पिता उनके लिए काफी सम्पत्ति छोड़कर चल बसे। यौवन का प्रारम्भ एवं सम्पत्ति होने के कारण, बाण संसार को स्वयं देखने के लिए घर से चल पड़े तथा उन्होंने विभिन्न प्रकार के लोगों से सम्बन्ध स्थापित किया। अपने समवयस्क मित्रों तथा साथियों में बाण ने प्राकृत के कवि ईशान, दो भाट, एक चिकित्सक का पुत्र, एक पाठक, एक सुवर्णकार, एक रत्नाकर, एक लेखक, एक पुस्तकावरक, एक मार्दंगिक, दो गायक, एक प्रतिहारी, दो वंशीवादक, एक गान के अध्यापक, एक नर्तक, एक आक्षिक, एक नट, एक नर्तकी, एक तांत्रिक, एक धातुविद्या में निष्णात और एक ऐन्द्रजालिक आदि की गणना की है। कई देशों का भ्रमण करके वह अपने स्थान प्रीतिकूट लौटा। वहां रहते हुए उन्हें हर्षवर्धन के चचेरे भाई कृष्ण का एक सन्देश मिला कि कुछ चुगलखोरों ने राजा से बाण की निन्दा की है इसलिए वे तुरन्त ही राजा से मिलने गए और दो दिन की यात्रा के पश्चात् अजिरावती के तट पर राजा को मिले। प्रथम साक्षात्कार में बाण को बहुत निराशा हुई क्योंकि सम्राट के साथी मालवाधीश ने कहा 'अयमसौभुजंग:' (यह वही सर्प (दुष्ट) है) अस्तु, बाण ने अपनी स्थिति का स्पष्टीकरण किया और सम्राट् उससे प्रसन्न हुए सम्राट के साथ कुछ मास रहकर बाण वापिस लौटा और उन्होंने प्रस्तुत हर्षचरित के रूप में हर्ष की जीवनी लिखनी प्रारम्भ की।

बाण की आत्मकथा यहां समाप्त हो जाती है और बाण के अन्तिम समय के विषय में हमें कुछ भी ज्ञात नहीं है। परन्तु ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि बाण को राजसंरक्षण मिला और उन्होंने भी हर्ष चरित लिखकर उसका मूल्य चुका दिया। बाण का भूषणभ‌ट्ट अथवा भ‌ट्ट पुलिन्द नाम का एक पुत्र था जिसने बाण की मृत्यु के पश्चात कादम्बरी को सम्पूर्ण किया।

बाण का काल

बाण के काल निर्णय में कोई कठिनाई नहीं है। हर्षचरित के प्रारम्भ में वे हर्ष को राज्य करता हुआ राजा बतलाते हैं–

जयति ज्वलत्प्रतापज्वलनप्राकारकृतजगद्रश।
सकलप्रणयिमनोरथसिद्धि श्रीपर्वती हर्ष:॥

हर्ष के वंश का वर्णन उदाहरणत: प्रभाकरवर्धन एवं राज्यवर्धन के नाम यह नि:सन्देह सिद्ध करते हैं कि बाण कन्नौज के सम्राट हर्षवर्धन (606-646) के राजकवि थे।

बाण का यह काल बाह्य साक्ष्यों से भी साम्य रखता है। बाण का उल्लेख 9वीं शताब्दी में अलंकार शास्त्र के ज्ञाता आनन्दवर्धन ने किया। सम्भवत: बाण आनन्दवर्धन से बहुत पहले हो चुके थे। वामन (750 ईस्वी) ने भी बाण का उल्लेख किया। गौड़वाहो के लेखक वाक्पति राज (734 ईस्वी) भी बाण की प्रशंसा करते हैं।

महाकवि बाण भट्ट की कृतियां

कादम्बरी और हर्षचरित के अतिरिक्त कई दूसरी रचनाएँ भी बाण की मानी जाती हैं। उनमें से मार्कण्डेय पुराण के देवी महात्म्य पर आधारित दुर्गा का स्त्रोत चंडीशतक है। प्राय: एक नाटक 'पार्वती परिणय' भी बाण द्वारा रचित माना जाता है। परन्तु वस्तुत: इसका लेखक कोई पश्चाद्वर्ती वामन भ‌ट्टबाण है।

हर्ष-चरित

ऐतिहासिक कथानक से सम्बन्धित हर्षचरित संस्कृत का सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। इस समय उपलब्ध हर्षचरित आठ उच्छ्वासों में विभाजित है। जिसमें से पहले ढाई उच्छ्वास बाण की आत्मकथा रूप में हैं। तदुपरान्त स्थाणीश्वर (आधुनिक थानेश्वर)

के पुण्यभूति वंश, जिनमें हर्ष के पिता प्रभाकरवर्धन का जन्म हुआ था, का वर्णन है। बाण ने प्रभाकरवर्धन की पुत्री राज्यश्री और कन्नौजाधिपति ग्रहवर्मा मौखरि के विवाह का वर्णन किया है। अपने ज्येष्ठ पुत्र राजवर्धन को हूणों का हनन करने के लिए भेजकर प्रभाकरवर्धन ज्वरग्रस्त हो गए। बाण ने उसके रोग, मृत्यु, दाह-संस्कार एवं साम्राज्ञी यशोमती के आत्मदाह का वर्णन किया है। तभी गौड़ एवं मालव सेनाओं के कन्नौज पर आक्रमण तथा ग्रहवर्मा की हत्या की सूचना मिलती है यह सुनकर राज्यवर्धन कन्नौज की ओर बढ़े। शत्रुओं ने हथियार डाल दिए। परन्तु चालाकी खेली। राज्यवर्धन को शत्रु शिविर में आमंत्रित किया गया और उनकी निर्मम हत्या कर दी गई। हर्ष ने अपने बहनोई एवं भाई की हत्या का बदला लेने की प्रतिज्ञा की तथा कन्नौज की ओर प्रस्थान किया। हर्ष की बढ़ती हुई सेना के सामने शत्रु भाग निकला। यह सुनकर हर्ष के विस्मय का अन्त न था कि राज्यश्री कैद से छूटकर विंध्याचल की ओर चली गई। बहुत परिश्रमयुक्त खोज के पश्चात् हर्ष ने आत्मदाह करने को तत्पर राज्यश्री को दिवाकर मित्र ऋषि के आश्रम के पास पाया और गंगा के तट पर अपने शिविर में ले आया। यहाँ ग्रंथ अकस्मात् समाप्त हो जाता है।

ऐसा कहा जाता है कि बाण का विचार हर्ष के चरित्र को पूर्णरूपेण लिखने का नहीं था। वह इसका केवल मात्र एक अंश लिखना चाहते थे क्योंकि उन्होंने अपने श्रोताओं को बतलाया है 'हर्ष के जीवन का वर्णन' सैकड़ों जीवनों में भी नहीं किया जा सकता। यदि आप उसका एक अंश सुनना चाहते हो तो मैं तैयार हूँ। यह भी ठीक ही कहा जाता है कि 'हर्षचरित' हर्ष के जीवन की केवल एक घटना मात्र है क्योंकि हर्ष चरित से उपलब्ध ऐतिहासिक ज्ञान बहुत ही कम है। परन्तु इस ग्रंथ की समालोचना करते हुए हमें इसे ऐतिहासिक रचना के रूप में नहीं देखना चाहिए। वस्तुत: उसे ऐतिहासिक कथानक से युक्त एक काव्य कहना ही अधिक युक्तिसंगत है। लेखक की पूर्ण शक्ति काव्य-प्रतिभा का प्रदर्शन करने पर ही केन्द्रित है और ऐतिहासिकता उनके लिए गौण है। उन्होंने कृति के प्रतिनायक भूत गौड़ एवं मालव राजाओं का नाम भी नहीं दिया है। भूमि को गौड़ों से शून्य करने के हर्ष के निश्चय होने पर भी, बाण ने गौड़ों की भावी घटनाओं को छोड़ दिया है। जहां पाठक विंध्यपर्वत में से हर्ष की गवेषणा के परिणाम को सुनने को उत्कण्ठित हैं वहां बाण विंध्पर्वत का सूक्ष्म वर्णन करने में संलग्न हैं।

अस्तु, बाण ने हर्ष की प्रस्थान करती हुई सेना का, राज्यसभा का, धार्मिक सम्प्रदायों का, ग्रामों का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है जो कि इतिहास की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है।

कादम्बरी

जहां हर्षचरित आख्यायिका के लिए आदर्शरूप है वहाँ गद्यकाव्य कादम्बरी कथा के रूप में। बाण के ही शब्दों में इस कथा ने पूर्ववर्ती दो कथाओं का अतिक्रमण किया है। **अलब्धवैदग्ध्यविलासमुग्धया धिया निबद्धेय-मतिद्वयी कथा–कदम्बरी।** सम्भवत: ये कथाएं गुणाढ्य की बृहत्कथा एवं सुबन्धु की वासवदत्ता थीं। कादम्बरी की कथा संक्षेप में इस प्रकार है–

विदिशा के राजा शूद्रक की सभा में एक चाण्डाल कन्या एक शुक को लाई जिसके पूर्व जन्म के वृतान्त का उद्घाटन जावसि ऋषि ने अपनी कथा में किया है।

उज्जयिनी में तारापीड नाम का एक राजा था जिसका शुकनास नाम का एक बुद्धिमान मंत्री था। राजा को चन्द्रापीड नाम के एक पुत्र की प्राप्ति हुई और मंत्री के पुत्र का नाम वैशम्पायन था। दिग्विजय के प्रसंग में चन्द्रापीड एक सुन्दर अच्छोदसरोवर पर पहुँचा जहाँ असमय में दिवंगत प्रेमी पुण्डरीक की प्रतीक्षा करती हुई कामपीड़ित कुमारी महाश्वेता नाम की एक सुन्दरी उसे मिली। महाश्वेता ने अपनी सखी कादम्बरी के विषय में चन्द्रापीड को बताया और उसके कादम्बरी के पास ले गयी। प्रथम दर्शन से ही कादम्बरी और चन्द्रापीड का प्रेम हो गया। तभी चन्द्रापीड के पिता ने उसे वापिस बुलाया और अपनी पत्रलेखा नाम की परिचारिका को कादम्बरी के पास छोड़कर चन्द्रापीड वापस आ गया। पत्रलेखा ने भी कादम्बरी-विषयक सूचना को भेजते हुए चन्द्रापीड को प्रसन्न रखा। बाण की कृति यहाँ समाप्त हो जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि बाण इस कृति को सम्पूर्ण किए बिना ही दिवंगत हुए जैसा कि उनके पुत्र ने कहा है–

याते दिवं पितरि तद्वचसैव सार्ध
विच्छेदमाप भुवि यस्तु कथाप्रबन्ध:।
दु:खं सतां यदसमाप्तिकृतं विलोक्य
प्रारण्य एव स मया न कवित्वदर्पात्॥

पुलिन्द अथवा भूषणभट्ट ने इस कथा को सम्पूर्ण किया।

जहां तक कथानक का सम्बन्ध है, बाणभट्ट बृहत्कथा के ऋणी हैं। सोमदेव द्वारा रचित बृहत्कथा के संस्कृत संस्करण में उपलब्ध सोमदेव एवं कमरन्द्रिका की कथा चन्द्रापीड एवं कादम्बरी की कथा से साम्य रखती हैं। परन्तु शुकनास का चरित्र-चित्रण वैशम्पायन तथा महाश्वेता की प्रेमकथा इत्यादि बाण की कल्पना है। कथानक के आविष्कार के लिए बाण को यश प्राप्त नहीं हुआ परन्तु उदात्त चरित्र-चित्रण, विविध वर्णन, मानवीय भावों के चित्रण तथा प्रकृति सौन्दर्य के कारण ही बाण को कवियों में उच्च स्थान की प्राप्ति हुई है।

महाकवि बाणभट्ट की शैली

एक विद्वान आलोचक के अनुसार विशेषणबहुल वाक्य रचना में, श्लेषमय अर्थों में तथा शब्दों के अप्रयुक्त अर्थों के प्रयोग में ही बाण का वैशिष्ट्य है। उनके गद्य में लालित्य है और लम्बे समासों में बल प्रदान करने की शक्ति है। वे श्लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, सहोक्ति, परिसंख्या और विशेषत: विरोधाभास का बहुलता से प्रयोग करते है। जैसा कि अच्छोदसरोवर के उल्लेख से स्पष्ट है उनका प्रकृति वर्णन तथा अन्य प्रकार के वर्णन करने पर अधिकार है। कादम्बरी में शुकनास तथा हर्षचरित के प्रभाकरवर्धन की शिक्षाओं से बाण का मानव प्रकृति का गहन अध्ययन सुस्पष्ट है।

बाण की शब्दावली विस्तृत है और प्राय: वह एक शब्द के सभी पर्यायों का प्रयोग करते हैं। उन्होंने 'ध्वनि' के लिए 19 शब्दों का प्रयोग किया है। इसी प्रकार विशेषणों के प्रयोग में बाण निष्णात हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि विशेषणों का अन्त नहीं होगा। उनके वर्णन जैसे उज्जयिनी तथा दिवाकर मित्र के आश्रम का वर्णन विस्तृत होने पर भी निर्दोष, वैविध्यपूर्ण एवं प्रभावशाली हैं।

बाणभट्ट का मानव प्रकृति का ज्ञान आश्चर्यजनक है। उसका कोई भी तत्त्व अनुद्घाटित नहीं रहा। यह ठीक ही कहा गया है **'बाणोच्छिष्टं जगत सर्वम्'।** बाण ने किसी भी कथनीय बात को छोड़ा नहीं जिसके कारण कोई भी पश्चाद्वती लेखक बाण को अतिक्रांत न कर सका। कवि की सर्वतोमुखी प्रतिभा, व्यापक ज्ञान, अद्भुत वर्णन शैली और प्रत्येक वर्ण्य-विषय के सूक्ष्मातिसूक्ष्म वर्णन के आधार पर यह सुभाषित प्रचलित है कि बाण ने किसी वर्णन को अछूता नहीं छोड़ा है और उन्होंने जो कुछ कह दिया, उससे आगे कहने को बहुत कुछ शेष नहीं रह जाता।

बाण ने जितनी सुन्दरता, सहृदयता और सूक्ष्मदृष्टि से बाह्य प्रकृति का वर्णन किया है, उतनी ही गहराई से अन्त: प्रकृति और मनोभावों का विश्लेषण किया है। उनके वर्णन इतने व्यापक और सटीक होते हैं, कि पाठक को यह अनुभव होता है कि उन परिस्थितियों में वह भी ऐसा ही सोचता या करता। प्रात: काल वर्णन, सन्ध्यावर्णन, शूद्रकवर्णन, शुकवर्णन, चाण्डालकन्या वर्णन आदि में बाण ने वर्णन ही नहीं किया है, अपितु प्रत्येक वस्तु का सजीव चित्र उपस्थित कर दिया है। चन्द्रापीड को दिये गये शुकनासोपदेश में तो कवि की प्रतिभा का चरमोत्कर्ष परिलक्षित होता है। कवि की लेखनी भावोद्रेक में बहती हुई सी प्रतीत होती है। शुकनासोपदेश में ऐसा प्रतीत होता है मानो सरस्वती साक्षात मूर्तिमती होकर बोल रही हैं।

बाण के वर्णनों में भाव और भाषा का सामंजस्य, भावानुकूल भाषा का प्रयोग, अलंकारों का सुसंयत प्रयोग, भाषा में आरोह और अवरोह तथा लम्बी समासयुक्त पदावली के पश्चात् लघु पदावली आदि गुण विशेष रूप से प्राप्त होते हैं। प्रत्येक वर्णन में पहले विषय का सांगोपांग वर्णन मिलता है, बहुत समस्तपद मिलते हैं, तत्पश्चात् श्लेषमूलक उपमायें और उत्प्रेक्षाएँ, तदनन्तर विरोधाभास या परिसंख्या से समाप्ति। श्लेषमूलक उपमा प्रयोग, विरोधाभास और परिसंख्या के प्रयोगों में क्लिष्टता, दुर्बोधता और बौद्धिक परिश्रम अधिक है। कहीं-कहीं वर्णन इतने लम्बे हो गये हैं कि ढूँढ़ने पर भी क्रियापद मिलने कठिन हो जाते हैं। महाश्वेता-दर्शन में एक वाक्य 67 पंक्तियों का है और कादम्बरी दर्शन में तो एक वाक्य 72 पंक्तियों का हो गया है। विशेषण के विशेषणों की परम्परा इतनी लम्बी है कि मूल क्रिया लुप्त सी हो जाती है। ऐसे वर्णनों में वर्णन का स्वास्त्य रह जाता है, पर कथाप्रवाह पद-पद पर प्रतिहत हो जाता है।

बाण का भाव एवं कल्पना पर अद्वितीय अधिकार था। उसके वाक्यों की लम्बाई असाधारण होते हुए भी मनोरंजक तथा उत्कृष्ट है। बाण की कृतियों में भावों की समृद्धता एवं अभिव्यक्ति की प्रचुरता होने से वे सहृदयों के हृदयों पर प्रभाव डालती है वस्तुत: ठीक ही कहा गया है–

''वाणी वाणी बभूव''।

दण्डी

यद्यपि दण्डी के काल एवं जीवन के विषय में उपलब्ध प्रामाणिक साम्री अपर्याप्त है तथापि नि:सन्देह दण्डी को लेखक के रूप में पर्याप्त यश की उपलब्धि हुई। कहा गया है–

जाते जगति वाल्मीकि कविरित्यभिधाभवत्।
कवीति ततो व्यासे कवय: त्रयी दण्डिनी॥

अर्थात् वाल्मीकि के उत्पन्न होने पर 'कवि' शब्द उपाधि रूप में संसार में प्रचलित हुआ। व्यास के होने पर 'दो कवि' और दण्डी के होने पर 'तीन कवि' हो गए।

दण्डी का काल

बाणी और सुबन्धु की अपेक्षा दण्डी की सरल शैली होने के कारण दण्डी को पूर्ववर्ती कहा जाता है।

नवीं शताब्दी के अन्त तक लेखक के रूप में दण्डी के यश की स्थिरता उपलब्ध होती है क्योंकि शारंधर पद्यति एवं सूक्तिमुक्तावली में उद्धृत राजशेखर की दण्डी-सम्बद्ध उल्लिखित प्रशस्ति इस प्रकार है–

त्रयोऽग्न्यस्त्रयो वेदास्त्रयो देवास्त्रयो गुणा:।
त्रयोदण्डीप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुता:॥

दण्डी के व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में अवन्तिसुन्दरी के प्राप्त होने के पूर्व बहुत कम ज्ञात था। यद्यपि अवन्तिसुन्दरी के कर्त्ता के विषय में मतैक्य नहीं है तथापि पांडुरंग वामन काणे तथा वी. राघवन जैसे विद्वानों के अनुसार यह दण्डी की ही कृति है। अवन्तिसुन्दरी कथा की भूमिका भाग के अनुसार दण्डी के पितामह दामोदर प्रसिद्ध कवि भारवि के मित्र थे जिन्होंने उसका परिचय चालुक्य सम्राट विष्णुवर्धन (615-635 ई.) से करवाया था। हमें ज्ञात है कि दामोदर गंगराज दुर्विनीत के मित्र थे जिनका काल 605-650 ई. माना जाता है। क्योंकि दण्डी दामोदर के पौत्र थे, अत: उनका काल 50 वर्ष बाद (665-683 ई.) में होने की सम्भावना है। यही काल दूसरे ज्ञात तथ्यों से भी साम्य रखता है। अवन्तिसुन्दरी में वाकाटक नरेश प्रवरसेन, कालिदास, सुबन्धु, बाण एवं मयूर का उल्लेख है जिससे सिद्ध होता है कि दण्डी का काल 650 ई. के पश्चात् रहा होगा। इससे दण्डी के काल के बाद की सीमा निर्धारित होती है। ऊपर की सीमा का निर्धारण काव्यादर्श पर आधारित नृपतुंग के कन्नड ग्रंथ 'कविराज मार्ग' (815-875 ई.) के आधार पर किया जा सकता है। पुनश्च, विज्जिका नाम की कवयित्री प्राय: उद्धृत निम्नलिखित श्लाकों में दण्डी का उल्लेख करती है–

नीलोत्पलदलश्यामां विज्जिकां मामजानता।
वृथैव दण्डिना प्रोक्तं सर्वशुक्ला सरस्वती॥

विज्जिका, पुलकेशिन् द्वितीय के ज्येष्ठ पुत्र महाराज चन्द्रादित्य की महारानी मानी जाती है और उसका उल्लेख शक संवत् (581-879) के नेरूर ताम्रलेख में मिलता है। यदि यह सत्य है तो दण्डी विज्जिका के कुछ पूर्व ही हुए। इससे सिद्ध होता है कि दण्डी की रचनाओं का काल लगभग 660-680 ईस्वी में रहा होगा।

दण्डी की कृतियां

जैसा कि पहले कहा जा चुका है राजशेखर के ग्रन्थ से उद्धृत एक श्लोक के अनुसार दण्डी ने तीन ग्रन्थों की रचना की है। इनमें से दो दशकुमारचरित और काव्यदर्श हैं। तीसरे ग्रन्थ के विषय में बहुत अधिक मतभेद विद्यमान हैं। पिशेल मृच्छकटिक को दण्डी की कृति मानते हैं परन्तु इसमें कोई प्रमाण नहीं। इसी प्रकार छन्दोविरचित तथा कलापरिच्छेद भी दण्डी के ग्रन्थ नहीं माने जा सकते क्योंकि छन्दोविरचित में केवल मात्र छन्दों का ही निर्देश है और कलापरिच्छेद सम्भवत: काव्यादर्श का ही एक अध्याय था। प्रो. काणे के अनुसार अवन्तिसुन्दरी दण्डी की तीसरी कृति मानी जा सकती है।

अगाशे ने काव्यादर्श के लेखक का गद्यकार दण्डी से तादात्म्य स्वीकार नहीं किया। यह सम्भव है कि काव्यशास्त्री दण्डी, गद्यकार दण्डी से भिन्न रहा हो। परन्तु यह बात भी असम्भव नहीं है कि एक उसके यौवन की रचना हो और दूसरी प्रौढ़ अवस्था की।

दशकुमारचरित

दशकुमारचरित के हस्तलिखित तथा प्रकाशित संस्करणों में प्राय: तीन भाग हैं–(1) पूर्व पीठिक (2) दशकुमार चरित (3) उत्तरपीठिका (शेष)। इनमें से मध्यवर्ती अष्टमोच्छवासात्मक अंश ही दण्डी की वास्तविक कृति मानी जाती है। परन्तु क्योंकि इनमें राजवाहन की असम्पूर्ण कथा एवं सात मित्रों की कथाएँ हैं अत: वह असम्पूर्ण है। पूर्व पीठिका पाँच उच्छ्वासों में राजवाहन की बची हुई कथा तथा पुष्पोद्भव एवं सोमदत्त नामक दो कुमारों की कथा को भी देती है। और उत्तरपीठिका में दण्डी के द्वारा असम्पूर्ण छोड़ी गई विश्रुत चरित की कथा उपलब्ध होती है। भोज ने अपने सरस्वती कण्ठाभरण में पूर्वपीठिका का स्तुति श्लोक उद्धृत किया है। अत: यह भाग ग्यारहवीं शताब्दी ई. पूर्व ही जुड़ चुका होगा। उत्तरपीठिका के कई संस्करण हैं–एक

चक्रपाणि का, दूसरा नारायण का, और कुछ भाग पद्मनाम के। क्योंकि मुख्य कथा में उल्लिखित बातों से पूर्वपीठिका एवं उत्तरपीठिका में कई स्थानों पर विरोध पाया है अत: पूर्वपीठिका तथा उत्तरपीठिका को पश्चाद्वर्ती सिद्ध करना सुगम है। उदाहरणत: मुख्य भाग में अर्थपाल तथा प्रमति कामपाल के पुत्र हैं जिनकी माताओं के नाम क्रमश: कान्तिमति तथा तारावली है, परन्तु पूर्व-पीठिका में अर्थपाल तारावली का पुत्र है और प्रमति सुमति नामक मंत्री का। इसी प्रकार मुख्य भाग में विश्रुत के पितामह का नाम सिन्धुदत्त है परन्तु पूर्वपीठिका में उनका नाम पद्मोद्भव है। पुनश्च मुख्य भाग में राजकुमार राजकुमारी के अनुज की सहायता से अन्त:पुर में प्रवेश पाता है परन्तु पूर्वपीठिका में एक सहकारी विद्याधर की सहायता से। इसी प्रकार ग्रन्थ में अनेक विरोध एवं विप्रतिपत्तियाँ विद्यमान हैं।

सुबन्धु एवं बाण से भिन्न, दण्डी ने कथा में काव्य की अलंकृत चमत्कृति का प्रदर्शन करने में अत्यधिक प्रयत्न किया है। दण्डी के गद्यकाव्यों का मुख्य उद्देश्य जीवन तथा यथार्थता का चित्रण करना है जो अन्य गद्यकाव्य में कहीं-कहीं उपलब्ध होता है।

एकाएक राजवाहन को एक बन्दी के रूप में प्रस्तुत करते हुए दशकुमार चरित की कथा प्रारम्भ होती है। चम्पा के अभियान में राजवाहन को अपने सब मित्र मिलते हैं जो अपनी 'साहसिक घटनाओं' का वर्णन करते हैं, दूसरे उच्छ्वास में समृद्ध घटनाओं एवं विविध पात्रों से युक्त उपहार वर्मा की कथा है। मारीचि नाम के ऋषि तथा वास्तु-पाल नाम के श्रेष्ठी का प्रवञ्चना बहुत रोचक है। नायक के द्यूतशाला में अनुभव तथा घरों में सेंध लगाना आदि हास्यपूर्ण घटनाएँ हैं। तीसरे उच्छ्वास में उपहार वर्मा की कथा है। उसने राज्यापहारी के मन पर अधिकार करके अपनी अद्भुत सौन्दर्य देने की शक्ति के विषय में सुझाया। इस प्रकार सौन्दर्यशक्ति के बहाने से उनकी हत्या कर दी तथा अपने पिता के खोए हुए राज्य को वापस लिया। चतुर्थ उच्छ्वास में बतलाया गया है कि अर्थपाल ने अपने पिता के खोए मन्त्रिपद तथा मणिकार्णिका नामक राजकुमारी को प्राप्त किया। पंचम उच्छ्वास में प्रमति श्रावस्ती की राजकुमारी का पाणि-ग्रहण करता है। युवराज की यात्रा के वर्णन में ग्राम्य तथा नागरिक जीवन का अनेक प्रकार का उल्लेख प्राप्त होता है। षष्ठ उच्छ्वास में मित्रगुप्त के द्वारा खुँह देश की राजकुमारी की प्राप्ति का वर्णन है। इसमें दण्डी ने समुद्र पर किये गये साहसों का वर्णन किया है। सप्तम उच्छ्वास में मित्रगुप्त के अनुभवों का वर्णन है।

अष्टम उच्छ्वास में विश्रुत के साहसिक कार्यो का वर्णन है जो विदर्भ देश के राजकुमार को उसका खोया हुआ राज्य दिलाता है। इसमें राजनीतिशास्त्र पर परिष्कृत व्यंग है। आनन्द एवं सुगम जीवन का सशक्त प्रतिपादन त्रुटिपूर्ण हेतु पर आधारित है। एकाएक प्रारम्भ के समान यहाँ कृति समाप्त हो जाती है।

दशकुमारचरित धूर्त्तता से पूर्ण काव्य कहा जाता है। द्युतक्रीड़ा, सेंध लगाना, चालाकी, धूर्त्तता, प्रवंचना, हिंसा, हत्या, जालसाजी, अपहरण एवं अवैध प्रेम एक-एक अथवा सामूहिक रूप में सब कथाओं में मिलते हैं। लेखक का समाज के प्रति व्यवहार अतीव सोपालम्भ है। ब्राह्मण, संन्यासी, राजा, राजकुमारियाँ एवं पवित्र साधुओं का उपहास किया गया है। देवताओं को भी नहीं छोड़ा गया। परन्तु इसका उद्देश्य अनैतिकता का समर्थन करना नहीं है। लोगों की मिथ्या मान्यताओं का विश्लेषण करके समाज के सम्मुख प्रस्तुत करना ही इनका मुख्य उद्देश्य है।

दण्डी का चरित्र-चित्रण बहुत प्रभावशाली है। उन्होंने मारीचि ऋषि, गणिका काममंजरी, तथा धात्री श्रृंगालिका तथा सिपाहियों के अफसर कान्तक के जीवन चित्र प्रदर्शित किए हैं। कवि द्वारा प्रस्तुत मनोरंजन स्थितियों में हास्य एवं व्यंग्य अभिव्याप्त हैं। निस्सन्देह दण्डी का भाषा पर अधिकार है परन्तु वह बढ़ा चढ़ाकर वस्तुओं का वर्णन नहीं करते और अपनी काव्यकला की प्रौढ़ता का सूक्ष्म दृष्टि से प्रदर्शन कर पाठक के हृदय पर प्रभाव डालते हैं। संस्कृत आलोचक उनके उत्कृष्ट शब्द सौन्दर्य की सराहना करते हैं। विद्वानों में यह प्रसिद्ध उक्ति प्रचलित है 'दण्डिन: पदलालित्यम्' और इसके दण्डी अधिकारी भी हैं। अनुप्रास के ललित प्रयोग से दण्डी मनोरंजक ध्वनि प्रभाव को उत्पन्न करते हैं। वे लम्बे समासों का प्रयोग करते हैं परन्तु अर्थ की व्यक्ति में अस्पष्टता नहीं आने देते। उनके वर्णन प्रभावशाली एवं हृदयग्राही होते हैं परन्तु वे पाठक के हृदय को आकर्षित किये रखते हैं क्योंकि उनके अलंकारों के प्रयोग एवं वर्णनीय विषय में एक कलात्मक सन्तुलन रहता है। दण्डी के पदलालित्य के उदाहरण रूप प्रस्तुत हैं–

अथ संगतगीतसंगीतं-संउतांगना सहस्रश्रृंगार हेला–
निरगानंगसंघर्षहर्षितै:।
अथवा
नीलनीरदनिकरपीवरतमोनिविडितायां राजवीथ्याम्।

इस प्रकार के उदाहरण प्राय: प्राचुर्य से मिलते हैं और 'दण्डिन: पदलालित्यम्' की उक्ति को सिद्ध करते हैं। दण्डी

का पदलालित्य गौरव का विषय है। उनकी भाषा में सुकुमारता, परिष्कार प्रांजलता, प्रसाद और माधुर्य गुण प्राप्त होते हैं। दशकुमारचरित पढ़ने पर पाठक को यह अनुभूति होती है कि वह कुछ सरस रचना का रसास्वाद कर रहा है। जीवन की अनुभूतियाँ आँखों के समक्ष उतर आती हैं। और वह कवि को अपना एक अतरंग मित्र सा अनुभव करता है। दण्डी के गद्य में न तो सुबन्धु के तुल्य 'प्रत्यक्षरश्लेष' की योजना है और न बाण के सदृश 'सरसस्यरवर्णपद' की कृत्रिमता। उसमें दैनिक व्यवहार की प्रवाहशील भाषा है। छोटे-छोटे पद और वाक्य नवशिशुओं के समान क्रीड़ा करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं और वे सहसा हृदय को आकृष्ट कर लेते हैं। कथाओं और उपन्यासों में प्रयुक्त मनीश शैली का इसमें अंतर्भाव दीखता है। भाषा की सरसता, मधुरता और सहज सुन्दरता नीरस में भी सरसता का आभास कर देती है।

राजा राजहंस और उनकी पत्नी बसुमती के वर्णन में पदलालित्य और माधुर्य दर्शनीय है :

''अनवरतयागदक्षिणारक्षितशिष्टविशिष्टविद्यासंभारभासुर-भूसुर निकर...

राज हंसी नाम धनदर्पकन्दर्पसौन्दर्यसौदर्यहृद्यनिरवद्य-रूपो भूपो बभूव। तस्य वसुमती नाम सुमती लीलावतीकुलशेखरमणी रमणी बभूव''। (पूर्व उच्छ्वास 1)

पश्चाद्वर्ती गद्यकाव्य

सुबन्धु एवं बाण की कृतियाँ पश्चाद्वर्ती गद्य लेखकों के लिए आदर्श रूप में प्रस्तुत हुई। पश्चाद्वर्ती लेखकों में निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं—धारा के सम्राट मुंज और भोज के सभापंडित धनपाल ने दसवीं शताब्दी में 'तिलकमंजरी' की रचना की। यह कादम्बरी को आदर्श मानकर लिखी गई है। यद्यपि धनपाल की कृति में भाषा एवं शैली के अलंकरण उपस्थित हैं तथापि उसमें बाण के काव्यात्मक गुणों का अभाव है।

ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जैन उदयदेव वादीभसिंह ने 'गद्यचिन्तमामणि' की रचना की। गुणमद्र के उत्तर पुराण में उपलब्ध जीवन्धर की गाथा पर यह आधारित है। यह शैली के प्रयोग में लगभग बाण का अनुकरण है।

वामनभट्ट बाण ने रेड्डी सम्राट वीरनारायण के प्रशस्तिभूत 'वेमभपालचरित' नामक ग्रन्थ की रचना की। वह बाणरचित हर्षचरित से स्पष्ट रूप में प्रभावित हुआ परन्तु बाण के कवित्व के सौन्दर्य को प्राप्त करने में सफल न हुआ।

सोड्ढल की 'उदयसुन्दरीकथा' जो कभी चम्पूकाव्य भी माना जाता था, बाण की शैली को अपना कर लिखी गई है। उसके वर्णन विस्तृत हैं और भाषा तथा अलंकार के प्रयोग करने में कवि का अधिकार है। परन्तु वास्तविक काव्य का सौन्दर्य उपलब्ध नहीं होता। सोड्ढल को लाटाधिपति वत्सराज (1026-1050 ई.) का राजाश्रय प्राप्त था।